International Journal of Humanities and Social Science Research
ISSN: 2455-2070; Impact Factor: RJIF 5.22
www.socialresearchjournals.com
Volume 2; Issue 8; August 2016; Page No. 30-36

भारत की परम्पराओं : नारी के सामाजिक स्थिति का पुनरावलोकन

अर्चना मिश्रा

शोध छात्रा इतिहास, अ$_0$प$_0$ सिंह वि$_0$वि$_0$ रीवा, मध्य प्रदेश, भारत।

सारांष

''नारी का मनुष्य–जाति की उत्पत्ति में ही नही वरन् समाज निर्माण में भी नारी का बहुत बड़ा योगदान रहा है। एक बेटी, बहन, पत्नी और माता के रूप में वह अपने कर्त्तव्यों का पालन करती हुई जीवन का अर्थ व्यक्त करती है, उसी से सम्पूर्ण मानव जाति के भाग्य का निर्णय होता है। स्त्री को स्वभाव से ही कोमल, भावुक और ममता की प्रतिमूर्ति माना गया है। उसे लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, काली आदि रूपों में पूजा गया है। स्त्रियों को धन, ज्ञान और शक्ति का प्रतीक माना गया है। हमारे देश को भी भारत माता कहकर सम्बोधित किया जाता है। स्त्री को पुरुषों का आधा अंग कहा गया और उसे अर्द्धांगिंनी के रूप में स्थान दिया गया। कोई भी कर्तव्य बिना स्त्री के अधूरा है। कहा भी गया है कि–''नारी परिवार की नीव है, परिवार, समुदाय की तथा समुदाय राष्ट्र की।''[1] इससे स्पष्ट होता है कि स्त्री राष्ट्र की नीव है। जिस देश में स्त्रियों का सम्मान होगा, वह राष्ट्र एक आदर्श राष्ट्र होगा। पुरुष को एक ऐसे वृक्ष की उपमा दी जा सकती है जो अपने चारों ओर के छोटे–छोटे पौधों से जीवन रस पाकर आकाश की ओर बढ़ता जाता है तो स्त्री को ऐसी लता कहना अनुचित न होगा जो पृथ्वी से बहुत थोड़ा सा स्थान लेकर अपनी सघनता में बहुत से अंकुरो को पनपाती हुई उस वृक्ष की विशालता चारों ओर से ढक लेती है। प्रकृति ने उसके शरीर को ही अधिक सुकुमार नहीं बनाया वरन् उसे मनुष्य की जननी का पद देकर उसके हृदय में अधिक कोमलता भर दी। सृष्टि के प्रारम्भ से ही नारी ने सामाजिक–जीवन के पोषण में अपनी ममता, वात्सल्य, त्याग, करूणा, कोमलता एंव मधुरता से अपूर्व योगदान दिया है। इतिहास साक्षी है कि पुरुष ने जीवन में प्रगति–पथ पर अग्रसर होने के लिए मां, बहन, पत्नी और प्रेयसी आदि किसी–न–किसी रूप में नारी से सहायता एवं प्रेरणा अवश्य ली है।

मूलशब्द: भारत, परम्परा, नारी, सामाजिक स्थिति, पुनरावलोकन

प्रस्तावना

भारत में ही नही वरन् विश्व के अन्य धर्मों में नारी की स्थिति समयानुसार बदलती रही है। विश्व के हर देश, हर धर्म में नारी जाति को प्रतिबंधों और वर्जनाओं की जंजीरों मे जकड़ कर रखा और नारी उन जंजीरों को तोड़ नहीं पायी और उनमें बराबर जकड़ती ही चली गई। लेकिन जैसे–जैसे समय बदला स्त्रियों की स्थिति में भी परिवर्तन होते गये और स्त्रियाँ बन्धनगत जंजीरों से मुक्त होती रहीं। भारतीय नारी की कहानी एक उतार–चढ़ाव की कहानी है। युगों से उत्थान–पतन की तरंगों में झूलती नारी को कभी सम्मान का स्वर्णिम शिखर मिला तो कभी अधोपतन की मझधार। उसकी सामाजिक स्थिति के दोनों पहलुओं–अधिकार एवं कर्तव्य में सदैव उतार–चढ़ाव आते रहे हैं। भारतीय संस्कृति में उसे सम्मान के सर्वोच्च शिखर पर इतना प्रतिष्ठित किया गया कि अर्धनारीश्वर ने गंगा तक को अपने मस्तक पर धारण किया। हिन्दुओं की धर्म कथाओं में अर्धनारीश्वर की कल्पनाओं ने नारी को और भी अधिक गौरवान्वित किया वहीं उसे ताड़न का अधिकारी भी बताया।[2]

किसी भी पारिवारिक संगठन के अध्ययन में स्त्रियों की प्रस्थिति और भूमिका का अध्ययन नितान्त आवश्यक है। पारिवारिक संगठन की संकल्पना, स्त्रियों के अस्तित्व, और सहभागिता के बिना अधूरी है। पारिवारिक जीवन की आन्तरिक संरचना की सबसे महत्वपूर्ण आधारशिला स्त्रियाँ हैं। परम्परागत भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति अत्यन्त दयनीय रही है। उनका कार्य–क्षेत्र परिवार के परिसर में ही केन्द्रित रहा है। पुत्री, पत्नी और माता के रूप में वह पिता, पति या पुत्र के अधीन रही। किसी भी समाज का सांस्कृतिक स्तर उस समाज में महिलाओं की स्थिति पर निर्भर करता है। वस्तुतः जिस समाज में महिलाओं की प्रस्थिति जितनी अच्छी होती है वह समाज उतना ही प्रगतिशील माना जाता है। इतिहास दर्शाता है कि महिलाओं की स्थिति समाज की प्रगतिशील अथवा प्रतिकारी झुकाव के अनुसार निश्चित होती रही है। भारतीय समाज में महिलाओं की प्रस्थिति समय के साथ–साथ उतार–चढ़ावों से परिपूर्ण नही है। सभी युगों में नारी की प्रस्थिति एक जैसी नहीं रही है। हमारी प्राचीन सामाजिक व्यवस्था में नारियों को उच्च सामाजिक प्रस्थिति प्राप्त थी। उन्हें सुख, वैभव, शान्ति, शक्ति व ज्ञान का प्रतीक माना जाता था। कहीं नारी की पूजा रण–चण्डी दुर्गा के रूप में हुई तो कहीं माँ सरस्वती के रूप में। महर्षि मनु के अनुसार–''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः। यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तात्रफलाः क्रियाः। परन्तु धीरे–धीरे नारियों को दुर्बल समझकर उनके अधिकार व कार्य सीमा पर हस्तक्षेप करना प्रारंभ कर दिया। इसके परिणाम स्वरूप एक समय ऐसा भी आया जब स्त्रियों की सीमा घर की चहार दिवारी तक सीमित हो कर रह गई। परिवार में कन्या का जन्म अशुभ माना जाने लगा। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय समाज में नारियों की प्रस्थिति में काफी सुधार हुआ। हमारे देश की स्त्रियाँ आज समाज के हर क्षेत्र में पुरुषों की बराबरी करने में प्रयत्नशील हैं।[3]

प्राचीन समाज में स्त्रियों से सम्बन्धित दो विचार के सम्प्रदाय मिलते हैं। एक सम्प्रदाय का कहना है कि ''स्त्रियाँ पुरुषों के बराबर थीं, जबकि दूसरे सम्प्रदाय का कहना है कि स्त्रियों का न केवल अपमान ही होता था बल्कि उनके प्रति घृणा भी की जाती थी। दोनों ही सम्प्रदायों ने अपने दृष्टिकोण की पुष्टि में धार्मिक साहित्य से उदाहरण दिए हैं। रामायण में कहा गया है कि स्त्रियों के मुख

पुरुषों की भाँति हैं, उनके शब्द मधु की बून्दों की भाँति हैं, किन्तु उनके मन तेज उस्तरे की भाँति हैं, उनके मन की थाह किसी को नहीं हो सकती है। जिस प्रकार मनु स्त्रियों को आधिपत्य की वस्तु मानना चाहते थे तथा जिस प्रकार युधिष्ठिर द्वारा घ्रूत क्रीड़ा में द्रोपदी को दाँव पर लगाया गया था, उससे यही सिद्ध होता है कि सभ्यता के प्रारम्भिक युगों में स्त्रियों को गुलाम तथा मूल्यवान प्रतिभूति ही माना जाता था।

वैदिक काल में महिलाओं की स्थिति

इस युग में महिलायें परिवार की केन्द्र बिन्दु थीं तथा वह परिवार की साम्राज्ञी थीं उन्हें समाज तथा परिवार में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। घरेलू सुख और पति–पत्नी के बीच स्नेह–प्रेम के प्रसंग ऋग्वेद के अध्यायों में वर्णित हैं। एक व्यक्ति जब तक वह अविवाहित होता है अधूरा होता है परन्तु जैसे ही वह स्त्री से विवाह करता है पूर्णता को प्राप्त करता है। मनु का कथन है कि सृष्टि के रचियता ब्रह्मा ने अपनी देह को दो भागों में विभाजित किया एक हिस्सा पुरुष बना तथा दूसरा आधा हिस्सा स्त्री हो गया। इस प्रकार विभाजित स्त्री और पुरुष जब विवाह के बंधन में बंधते हैं तब वे सम्पूर्णता को प्राप्त करते हैं। ऋग्वेद के मतानुसार नारी तू घर है। अथर्ववेद में कहा गया है कि नववधू, तू जिस घर में जा रही है, वहाँ की तू साम्राज्ञी हैं। तेरे सास, ससुर, देवर व अन्य तुझे साम्राज्ञी समझते हुये तेरे शासन में आनंदित हैं। यजुर्वेद से स्पष्ट होता है कि नारी को संध्या करने तथा उपनयन संस्कार के अधिकार प्राप्त थे। प्राचीन समय में सभी पितृसत्तात्मक समाजों में लड़कियों के जन्म का सामान्यतः कम स्वागत होता था। सभी स्थानों पर पुत्र को लड़कियों की अपेक्षा अधिक महत्व प्रदान किया जाता था। फिर भी लड़कियों का जन्म बहुत खतरनाक नहीं माना जाता था। दूसरी तरफ प्रारम्भिक उपनिषदों में से एक में उन अनुष्ठानों का वर्णन किया गया है जिसको करके एक विदुशी कन्या की प्राप्ति की जा सके। यद्यपि यह सच है कि ऐसे अनुष्ठान उतने प्रिय नहीं हुए जितना कि पुम्सावना संस्कार जो पुत्र की उत्पत्ति के लिए किया जाता है। फिर भी यह स्पष्टतः प्रकट होता है कि सुसंस्कृत, अच्छा व्यवहार करने वाली कन्या को लड़कों से भी अच्छा समझा जाता था ऐसी लड़की परिवार के गर्व का विषय थी। कन्या पैदा होने के पश्चात् पिता के परिवार में उसे भी पुत्र के समान ही समझा जाता था। माता–पिता का यह कर्तव्य था कि लड़की को अच्छी शिक्षा दिलाकर उसका सुशील व योग्य वर के साथ विवाह किया जावे।

सम्पत्ति के उत्तराधिकार के विषय में स्त्रियों को कोई भाग नहीं होता था, फिर भी प्रत्येक अविवाहित पुत्री को अपने भाइयों को मिलने वाले पितृधन का एक चौथाई भाग प्राप्त करने का अधिकार था। मृत्यु के पश्चात् माँ की सम्पत्ति पुत्रो व अविवाहित पुत्रियों में समान रूप से बांटी जाती थी। विवाहित पुत्रियों को केवल सम्मान स्वरूप थोड़ा ही भाग मिलता था। स्त्रीधन की उत्तराधिकारी केवल अविवाहित पुत्रियाँ होती थी। वंश विस्तार, पिण्डदान, तर्पण आदि कार्यों में लड़कों का महत्व होने की वजह से पुत्री की अपेक्षा पुत्र जन्म को अधिक महत्व दिया जाता था। इस प्रकार वैदिक काल में पुत्रों के प्रति पक्षपात नजर आता है। ऋग्वेद में भी बारम्बार पुत्रों की प्राप्ति की कामना की गई है, परंतु लड़कियों के साथ दुर्व्यवहार का भी कोई उल्लेख नही मिलता। स्त्रियों को अपना जीवन साथी चुनने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। जब लड़कियाँ परिपक्वता की आयु में प्रवेश करती थीं तब उनकी सहमति से ही उनका विवाह सम्पन्न हुआ करता था। प्रारंभिक विवाह के कई उदाहरण जाने जाते हैं। 'गान्धर्व विवाह' के भी उदाहरण ऋग्वेद काल में प्राप्त होते हैं जिसमें स्त्रियों की रूचि की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। बाल विवाह का प्रचलन नहीं था, महिलायें पर्दा नहीं करती थीं, बन्धनमुक्त वातावरण में जीवन व्यतीत करती थीं, माता–पिता भी पुत्र एवं पुत्री में कोई भेद नहीं करते थे।[4]

इस काल में पति के घर पर स्त्रियों की स्थिति अच्छी थी। स्त्रियों को घर की गृहस्थिन माना जाता था। हर कार्यों में स्त्रियों की राय भी जरूरी होती थी। पति अपनी पत्नी को दासी न मानकर साथी व मित्र मानता था। इसलिए पति पत्नी को 'दम्पत्ति' के नाम से पुकारा जाता था। पति पत्नी का सम्बन्ध जीवन पर्यन्त का साथ माना जाता था। दम्पत्ति को अटूट जोड़े के रूप में मान्यता प्राप्त थी। विवाहित जोड़े का सुख दोनों के प्यार में माना जाता था। महाभारत में लिखा है–'वही आदमी पूर्णता प्राप्त करता है जो अपनी पत्नी एवं बच्चों के साथ रहता है। पत्नी अपने पति की अर्द्धांगिनी कही जाती थी। पति एवं पत्नी की इस संयुक्तता को विवाह में की जाने वाली क्रियाएं और सुद्धढ़ बनाती है।'

पाणिग्रहण संस्कार (जिसमें पति–पत्नी का हाथ अपने हाथ में लेता है) और सप्तपदी (साथ–साथ सात फेरे लेना) अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है जो बराबरी और मित्रता के दो स्तरों की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति होते हैं। स्त्रियों को आर्थिक क्षेत्र में भी पूर्ण स्वतंत्रता थी। कृषि कार्य, तीर कमान बनाने एवं अन्य युद्ध सामग्री के निर्माण में सक्रिय रूप से भाग लेती थी। रंगाई, कसीदाकारी, टोकनी आदि के कार्य भी महिलायें किया करती थीं। अध्ययन का कार्य महिलाओं में अत्यन्त लोकप्रिय था। वैदिक साहित्य में ऐसी कई स्त्रियों का उल्लेख है जिन्होंने पुरुषों के समान प्रतिष्ठित दार्शनिक के रूप में ख्याति अर्जित की। विस्वासारा का उल्लेख एक दार्शनिक के रूप में मिलता है। दार्शनिक से आशय यहाँ 'ब्रम्हावेदिनी' से है जो मंत्रदृष्टि में पारंगत थीं। धार्मिक क्षेत्र में भी पत्नी समस्त अधिकारों का उपभोग करती थी तथा नियमित रूप से अपने पति के साथ समस्त धार्मिक कृत्यों व संस्कारों में भाग लेती थी। वास्तव में धार्मिक कृत्य तब तक अपूर्ण माना जाता था जब तक पत्नी उसमें भाग नहीं लेती थी। प्राचीन भारत में स्त्रियों का धार्मिक क्षेत्र में उच्च स्थान था।[5]

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति और स्थान उच्च स्तर पर था लेकिन उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों की दशा में गिरावट आई।

उत्तर वैदिक काल में महिलाओं की स्थिति

इस काल में स्त्रियों की स्थिति और स्थान दोनों में परिवर्तन हुआ। ऋग्वेद के समय जो स्थिति स्त्रियों की थी अथर्ववेद व उसके बाद के समय में स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन हुआ। महाभारत के अनुशासन पर्व में एक वर्णन मिलता है कि युधिष्ठिर ने बुद्धिमान भीष्म पितामह से महिलाओं की प्रकृति पर प्रकाश डालने का अनुरोध किया। युधिष्ठिर ने पूछा की क्या यह सही है कि स्त्रियाँ सभी बुराइयों की जड़ हैं और वे बहुत ही संकीर्ण दिमाग की होती हैं। भीष्म पितामह ने उत्तर दिया कि एक अर्थ में महिलायें स्वभाव से ही शीघ्र बहकावे में आने वाली होती हैं। उनमें अपनी भावनाओं

को रोकने के लिए पर्याप्त इच्छा शक्ति नहीं होती है। अतः उन्हे हमेशा ही पुरुष के संरक्षण की आवश्यकता पड़ती है। मनु ने भी इसी प्रकार वर्णन करते हुए लिखा है कि बाल्यकाल में स्त्री को अपने पिता के संरक्षण में युवावस्था में पति के एवं वृद्धावस्था में अपने पुत्रों के संरक्षण में रहना चाहिए। एक स्त्री को कभी भी अपने पिता, पति या पुत्र से स्वतन्त्र होने की नहीं सोचना चाहिए क्योंकि ऐसा करके वह दोनों परिवारों के लिए घृणित स्थिति का निर्माण कर देगी। महाकाव्यों के दौर में स्वयंवर प्रथा का उल्लेख मिलता है। स्वयंवर में महिला को अपने पति को चुनने की स्वतंत्रता थी यह प्रथा राजपरिवारों में प्रचलित थी। इसके उदाहरण सीता, द्रोपदी और दमयन्ती के स्वयंवर थे। लेकिन इस युग में वर के चुनाव की स्वतंत्रता धीरे–धीरे कम होती चली गई। पिता ही अपनी पुत्री के लिये वर चुनता था। विवाह की आयु घट गई थी। बाल–विवाह की प्रथा प्रारंभ हो गई थी। राजस्व पूर्व विवाहों को आदर्श विवाह घोषित किया गया। कोटिल्य ने लड़की की विवाह की आयु 10 से 12 वर्ष की आयु के मध्य करने का प्रावधान कर दिया गया। विवाह में कन्या की इच्छा का कोई महत्व नही रहा। महिलाओं का परिवार की सम्पत्ति पर कोई अधिकार नही रहा। भ्राता विहीन बहन को ही सम्पत्ति में हिस्से को मान्यता मिली है। मनु पुत्री को वैवाहिक व्यय का अधिकार देते हैं। विवाहित स्त्री का 'स्त्रीधन' पर ही अधिकार होता था। स्त्रीधन से तात्पर्य उस धन से है जो स्त्री को विवाह के अवसर पर उसके भाई, माता, पिता और पति द्वारा प्रदान किया जाता था। विधवा स्त्री अपने पति की सम्पत्ति की स्वामिनी होती थी। कोटिल्य स्त्री को स्वतंत्र घूमने की आजादी नहीं देते। मनु महिलाओं को केवल गृहकार्यों के अधिकारों तक सीमित करते हैं। इस प्रकार उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति दयनीय होने लगी थी।

पौराणिक काल में स्त्रियों की स्थिति

पौराणिक काल में स्त्रियों की स्थिति में गिरावट आई। सामाजिक क्षेत्र में पूर्व यौन परिपक्व विवाह का प्रचलन प्रारंभ हुआ, विधवा विवाह का निषेध होने लगा, पति को स्त्री के लिये भगवान का स्तर दिया जाने लगा, स्त्रियों के लिये शिक्षा का पूर्ण निषेध प्रारंभ हुई, सती प्रथा प्रचलन में आई, पर्दा प्रथा प्रारंभ हुई तथा बहुपत्नी प्रथा व्यवहार में स्वीकार की जाने लगी। एक पत्नी और गुलाम सम्पत्ति के अधिकारी नहीं होते, मान्यता के आधार पर स्त्री को उसके पति की सम्पत्ति के भाग से वंचित कर दिया गया। धार्मिक क्षेत्र में स्त्री को बलिदान भेंट करने से, प्रार्थना से, हट योग से तथा तीर्थ यात्रा करने से वचिंत कर दिया गया। इस युग में महिलाओं की स्थिति दासी जैसी हो गई। इस काल में पौराणिक लेखकों ने यह कहने का कार्य कि महिलाओं के लिये पति उत्तम होता है और उसके प्रति समर्पण ईश्वर के प्रति समर्पण है। उसे पति की पूजा करने से वे ही लाभ प्राप्त होते हैं। जो पति द्वारा ईश्वर को पूजने से पति को प्राप्त होते है। वास्तव में इस युग में महिलाओं की परतंत्रता में वृद्धि हुई। महिलाओं के लिये कई व्रतों का प्रावधान किया गया जिससे अंधविश्वास को बढ़ावा मिला। यह घोषित किया गया कि महिलाओं और शूद्रों को वेदों की वाणी नहीं सुनना चाहिये उनकी भलाई के लिये ही पुराणों की रचना की गई। 200 ई. और उसके बाद रजस्व पूर्व विवाहों का प्रचलन बढ़ गया। ब्रह्म पुराण में तो लड़कियों के विवाह की उम्र 4 वर्ष तक की वकालत की गई है।[6] ऐसी स्थिति में जब लड़कियों का विवाह अपरिपक्व आयु में होता था तब उसे अपने पति के चुनाव की कोई स्वतंत्रता नहीं थी। पुराणों ने गृहस्थ आश्रम पर ज्यादा बल दिया। लड़कियों को अविवाहित रहने की स्वतंत्रता नहीं थी। विधवाओं के पुर्नविवाह पर पूरी तरह से प्रतिबंध लगा दिया गया। यही नहीं इस काल में सती प्रथा को भी बढ़ावा मिला। प्रारंभ में तो सती प्रथा विधवा के लिये दूसरा विकल्प था लेकिन बाद में क्षत्रियों में सती प्रथा एक संस्था के रूप में विकसित हो गई। समुदाय में जौहर और सती होने की घटनायें वृहद स्तर पर घटती रही। पुराणों में सतियों के कई उदाहरणों का उल्लेख है। इस प्रथा के प्रसार से महिलाओं की स्थिति में न केवल गिरावट आई बल्कि उस पर प्रतिबंध बढ़ते चले गये। जहाँ महिलायें स्वयं सती होती उसे ऐसा समझा जाता कि वह अपने पति से अत्यधिक प्रेम करती जिससे उन्होंने आत्मोसर्ग किया। इस काल में महिलाओं को सम्पत्ति में अधिकार की कुछ छूट प्राप्त हुई। ऐसे व्यक्ति जिनकी संतान नहीं होती थी उनकी सम्पत्ति पर पत्नी को उत्तराधिकार दिया गया।[7]

उत्तर पौराणिक काल में स्त्रियों की स्थिति

मुस्लिम आक्रमण के फलस्वरूप देश में महिलाओं की दशा और गिरती चली गई। उनके अधिकारों और स्वतंत्रता पर प्रतिबंध बढ़ने लगा। उन पर कड़ाई की जाने लगी। एक तरफ तो मुसलमान हिंदुओं पर अपने रीति–रिवाजों को लाद रहे थे तो दूसरी तरफ हिंदू समाज खुद भी कठोर होता चला जा रहा था। इसके फलस्वरूप महिलाओं और निम्न जातियों के अधिकार और स्वतंत्रता पर कुठाराघात हुआ। इस प्रकार भारतीय इतिहास में उत्तर पौराणिक काल महिलाओं के संदर्भ में सबसे काला काल साबित हुआ। महिलाओं की प्रस्थिति में गिरावट 19वीं शताब्दी तक जारी रही। पर्दा प्रथा में महिलाओं को न केवल घरों में बंद कमरों में रहना पड़ता था बल्कि उन्हें बुरकों में रहना पड़ता था जिनमें केवल आँखों का भाग ही खुला और शेष शरीर पूरी तरह ढका हुआ रहता था। विधवा स्त्री या तो जला दी जाती थी या फिर वह स्वयं पूरी तरह आत्म निषेधों में जीवन जीती थी। विधवा पुनर्विवाह को मान्य नहीं किया जाता था। मुस्लिम शासकों के पहले ब्राह्मण सती प्रथा का पालन नहीं करते थे लेकिन बाद में ब्राह्मण स्त्रियों द्वारा भी सती होने के कुछ उदाहरण मिलते हैं। पन्द्रहवीं सदी में और उसके बाद के काल में जिन विधवा महिलाओं ने सती होना स्वीकार नहीं किया उन्हें अपमानित जीवन जीना पड़ा। सती प्रथा का विस्तार दक्षिण भारत तक हुआ।

धर्मशास्त्र काल में महिलाओं की स्थिति

तीसरी शताब्दी से लेकर ग्यारहवीं शताब्दी के पूर्वाद्ध तक का काल धर्मशास्त्र काल कहलाता है। इस काल में 'विष्णु संहिता', 'पराशर संहिता' एवं 'याज्ञवल्क संहिता' की रचना हुई जिसमें मनुस्मृति को ही व्यवहार की कसौटी मानकर वैदिक नियमों को पूर्णतः तिलांजली दे दी गई। महिलायें इस काल की सामाजिक एवं धार्मिक संकीर्ण विचारधारा की शिकार बनीं। वैदिक काल की 'गृहलक्ष्मी' माता एवं 'शक्ति प्रदायनी देवी' अब याचिका, सेविका व निर्बलता के प्रतीक

के रूप में दिखाई देने लगीं। वैदिक काल की वह नारी जो अपने प्रबल व्यक्तित्व के द्वारा देश के साहित्य और समाज के आदर्शों को प्रभावित करती थी, अब परतंत्र, पराधीन, निस्सहाय और निर्बल बन चुकी थी। पति स्त्री के लिये देवता है, विवाह ही उसके जीवन का एक मात्र संस्कार है, आदि विचार धाराओं ने इस काल में जन्म लिया। मनु स्मृति (5/148) में तो स्त्रियों के अधिकारों को छीनते हुये यहाँ तक लिख दिया कि 'नारी कभी स्वतंत्र रहने योग्य नहीं है, बचपन में पिता के अधीन, युवावस्था में पति के वश में तथा वृद्धावस्था में पुत्र के नियंत्रण में रहे।' साथ ही स्त्रियों के कर्तव्यों की व्याख्या करते हुये लिखा कि उनका परम कर्तव्य पति की सेवा ही है, चाहे पति कैसा भी क्यों न हो, साथ ही यह भी कहा गया कि विवाह का विधान ही महिलाओं का उपनयन है। पति की सेवा ही गुरूकुल का वास है और घर का काम ही पत्नी की सेवा है।[8]

इन सब तथ्यों से स्पष्ट होता है कि इस काल में महिलाओं की स्थिति ज्यादा खराब हो गई, जिसके फलस्वरूप महिलायें वस्तु बन गई। जिसे पुरुष अपनी इच्छा अनुसार किसी भी उपयोग में ला सकता था। इस प्रकार धर्मशास्त्र काल में महिलाओं को अधिकार विपन्न तो बनाया ही गया साथ ही धर्मानुसार आचरण के नाम पर उसकी स्थिति और गिरती चली गई। महिलाओं के लिये पतिव्रत धर्म के नाम पर संकुचित दायरे में सीमित कर दिया गया। मनुस्मृति में स्त्री को यद्यपि पूजने योग्य बताया परंतु उसकी स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगाकर उसकी स्थिति को इतना कमजोर कर दिया कि वह पति और परिवार रूपी वैसाखी के सहारे चलने के लिये मजबूर कर दी गई।

बौद्धकाल में स्त्रियों की स्थिति

उत्तर वैदिक काल विधि विधानों का प्रभुत्व और ब्राह्मणों की शक्ति में कालातीत वृद्धि हुई जिसके फलस्वरूप समाज में निम्न जातियों और महिलाओं की स्थिति में गिरावट आना शुरू हो गई। कोई भी धार्मिक कृत्यों की पूर्ति ब्राह्मणों के बिना संभव नही होती। ब्राह्मणों के वर्चस्व में अत्यधिक वृद्धि हुई। बुद्ध धर्म ने ऐसे समय में ईश्वर और व्यक्ति के बीच किसी मध्यस्थ को अस्वीकार करते ऐसे धर्म को जन्म दिया जिसमें बिना किसी असमानता के समूचा मानव समाज शामिल हो सकता था। बौद्धवाद ने आत्म नियंत्रण और आत्म संस्कृति के सिद्धांत पर जोर दिया। बौद्ध दर्शन के अनुसार कोई व्यक्ति स्वंय में उक्त दोनो गुणों को विकसित कर लेता है तो वह निवार्ण को प्राप्त हो सकता है। यदि कोई स्त्री भी उक्त दोनों गुणों को प्राप्त कर सके तो उसे भी निर्वाण प्राप्त हो सकता है ऐसी बौद्ध धर्म की मान्यता थी। इस प्रकार हिन्दू धर्म में महिलाओं की स्वतंत्रता पर जो अंकुश लगाये गये थे बौद्ध धर्म ने उनके लिये दरवाजे खोल दिये।

मध्यकाल में महिलाओं की स्थिति

मध्यकाल 11वीं शताब्दी से 18वीं शताब्दी के मध्य का माना जाता है। इस काल में स्त्रियों की स्थिति अत्यन्त निम्न हो गई थी। इस युग में ब्राह्मणों का प्रभुत्व बढ़ रहा था। अन्तर्विवाही व अन्य जातीय नियमों को कठोर बनाया जा रहा था। ब्राह्मणों ने कई कर्मकाण्ड व अन्य अनुष्ठानों का नये सिरे से प्रावधान कर दिया। महिलाओं को उन्होनें अत्यन्त ही निम्न श्रेणी में रख दिया। 11वीं शताब्दी में पुनः महमूद गजनवी ने भारत पर आक्रमण किया और विजय प्राप्त की। इस काल के पश्चात् अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक जब ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना हुई अथवा लगभग 700 वर्षों तक सामाजिक संस्थाओं का विघटन, परम्परागत राजनैतिक संरचना मे उथल पुथल, बड़ी संख्या में लोगों का प्रवासन तथा देश में आर्थिक मंदी आदि ने देश में सामाजिक जीवन में विशेष रूप से महिलाओं के पतन में योगदान किया। पर्दा प्रथा इस सीमा तक बढ़ गई कि स्त्रियों के लिये कठोर एकांत तक का नियम ही बन गया। शिक्षण की सुविधा पूर्णरूपेण समाप्त हो गई।

इस काल में पुत्री की उत्पत्ति अपमानजनक मानी जाने लगी। पुत्र का सम्मान बढ़ गया। कई स्थानों पर तो पुत्रियों की हत्या तक होने लगी। पुत्री को पराई मानकर उसके लालन पालन व शिक्षा पर ध्यान देना बन्द हो गया। पुत्र व पुत्री में समानता का दृष्टिकोण लुप्त हो गया। यहाँ तक कि पुत्री के पैदा होने पर परिवार में अजीब सा मायूसी का वातावरण बनने लगा। लड़कियों का पिता की सम्पत्ति पर अधिकार समाप्त हो गया। पति के परिवार में भी स्त्रियों की स्थिति निम्न हो गई। पुरुष का नियंत्रण बढ़ता ही गया। पति पत्नी को अपनी सम्पत्ति मानने लगा। पत्नी जो वैदिक काल में गृह–स्वामिनी थी मात्र भोग की वस्तु व घर की दासी बनकर रह गई। वह पूर्ण रूप से पति पर आश्रित व उसकी आज्ञाकारिणी दासी बनकर रह गई। समाज में लड़कियों को उच्च शिक्षा देने का विरोध हो गया। लड़कियों की शिक्षा को समाज विरोधी माना जाने लगा। घरेलू कार्यो में निपुणता ही स्त्री की सबसे बड़ी शिक्षा बनकर रह गई। स्वयं महिलाओं ने ही यह कहना आरम्भ कर दिया कि अधिक पढ़कर क्या करना है फूँकना तो चूल्हा ही है।

इस काल में यह माना जाने लगा कि स्त्री स्वभाव से अधिक भावुक व कामुक है और अपने इसी स्वभाव के कारण किसी के भी समक्ष समर्पण कर सकती है अतः इन पर कठोर नियंत्रण रखना आवश्यक है। पति भी अपनी पत्नी को मित्र या साथी न मानकर अपनी सम्पत्ति मानने लगा था। वह अब किसी भी कार्य में पत्नी की राय लेना महत्वपूर्ण नहीं मानता था। स्त्रियों का कार्यक्षेत्र सिर्फ चारदीवारी तक ही सीमित हो गया था। पत्नियों पर पति के अत्याचार भी बढ़ने लगे थे। स्त्रियों की पवित्रता व कौमार्य की रक्षा के नाम पर बाल–विवाह प्रचलन में आ गया। बेमेल विवाह होने लगे। स्त्रियों को अपनें जीवन साथी चुनने का अधिकार पूर्णतः समाप्त हो गया। विधवा पुर्नविवाह में रोक लग गई। सती प्रथा का प्रारम्भ भी इसी युग में हुआ था।[9]

पंद्रहवी शताब्दी में स्थिति में कुछ परिवर्तन आया। इसी अवधि में रामानुजाचार्य ने प्रथम भक्ति आंदोलन का आयोजन किया जिससे भारत की स्त्रियों के धार्मिक व सामाजिक जीवन में नवीन प्रवृत्तियों का सूत्रपात किया। चैतन्य, नानक, मीरा, कबीर, रामदास, तुलसीदास व तुकाराम जैसे संतों ने स्त्रियों के लिये धार्मिक पूजा–अर्चना का सबल पक्ष प्रस्तुत किया। यद्यपि उनकी स्त्रियों के प्रति धरणा उनके समय के प्रचलित दृष्टिकोण से मुक्त नहीं थी फिर भी इस आंदोलन ने स्त्रियों की धार्मिक स्वतंत्रता के मार्ग प्रशस्त कर दिये। पर्दा प्रथा समाप्त कर दी गई कथा व भजन कीर्तन में जाने से स्त्रियाँ घरेलू कामकाज से काफी मुक्त हो गई। भक्ति आंदोलन में गृहस्थाश्रम पर बल दिया गया परंतु संतो को अपनी पत्नी की इच्छा के बिना सन्यास लेने की अनुमति प्रदान नहीं

की गई। इसमें स्त्रियों के महत्वपूर्ण अधिकार निहित थे। इस आंदोलन के दूसरे प्रभाव भी हुये। मनु के समय से ही स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने से रोक दिया गया था। संतों ने स्त्रियों को धार्मिक पुस्तकों के अध्ययन और स्वयं को शिक्षित बनाने के लिए प्रेरित किया। इस प्रकार भक्ति आन्दोलन ने आर्थिक संरचना में कोई परिवर्तन नही किया। अतः स्त्रियों की स्त्रियों की स्थिति निम्न बनी रही।

भक्ति आंदोलन काल में महिलाओं की स्थिति

निम्न जातियों और महिलाओं की परिस्थिति पर सर्वाधिक सकारात्मक प्रभाव भक्ति आंदोलन का रहा जो संतों द्वारा चलाया गया था। इस आंदोलन की विशेषता थी कि यह गहन मानवतावादी दृष्टिकोण को लेकर चला। संतों ने जाति–पांति और लिंग के ऊँच–नीच के स्थान पर समानता के आदर्शो पर बल दिया। उनका मानना था कि भक्तों को भगवान की सीधे पूजा–अर्चना करने की स्वतंत्रता है। उन्होंने भगवान और भक्तों के बीच किसी मध्यस्थ की आवश्यकता को नकार दिया। संतों का मानना था कि ईश्वर की भक्ति कर सभी मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं। हिंदू सामाजिक संसार में भक्ति आंदोलन के काल में बहुत सी महिला संतों का प्रादुर्भाव हुआ। मीरा जैसी संत जिसने वैवाहिक जीवन त्याग दिया था, यद्यपि समाज की अग्र पंक्ति की संत नहीं बन सकीं पर उन्होंने भक्ति आंदोलन के अंतर्गत महिलाओं की स्वतंत्रता के द्वार खोलने का महत्वपूर्ण कार्य किया। संतों ने धार्मिक क्षेत्र में स्त्री–पुरुषों के समान अधिकार के लिये संघर्ष किया जिसका परिणाम हुआ कि महिलाओं को कुछ निश्चित सामाजिक स्वातंत्रता मिलनी शुरु हुई।[10]

ब्रिटिश काल में महिलाओं की स्थिति

अठारहवीं, उन्नीसवीं व मध्य बीसवीं शताब्दी तक अंग्रेज भारत के शासक बने रहे। ब्रिटिश शासन की अवधि में हमारे समाज की सामाजिक व आर्थिक संरचनाओं में अनेक परिवर्तन किए गए। यद्यपि ब्रिटिश शासन के 200 वर्षों की अवधि में स्त्रियों के जीवन में अदृश्य सुधार तो हुआ, फिर भी शिक्षा, रोजगार, सामाजिक अधिकारों, आदि को लेकर स्त्री–पुरुषों के बीच असमानताओं में कमी आयी। स्त्रियों को शिक्षा दिये जाने का विचार ब्रिटिश शासन काल में उदय हुआ। इससे पूर्व यह एक सार्वभौमिक मान्यता थी कि स्त्रियों को शिक्षा की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि उन्हें आजीविका का अर्जन नहीं करना है। भक्ति आन्दोलन के बाद ईसाई मिशनरियों ने स्त्रियों की शिक्षा में रुचि लेना प्रारम्भ किया। 1824 में सबसे पहली बार लड़कियों का स्कूल बम्बई में प्रारम्भ हुआ। लार्ड डलहौजी ने भी घोषणा की कि परिवार के बच्चों को शिक्षा देने की अपेक्षा अन्य कोई भी परिवर्तन भारत के लोगों के जीवन के लिए लाभकारी एवं महत्वपूर्ण सिद्ध नहीं हो सकता। 1875 तक कलकत्ता, मद्रास व बम्बई विश्वविद्यालयों ने लड़कियों को प्रवेश की अनुमति प्रदान नहीं की थी। केवल 1882 के बाद ही लड़कियों को शिक्षा प्राप्त करने की अनुमति प्रदान की गई। तब से स्त्रियों की शिक्षा के क्षेत्र में निरन्तर प्रगति होती रही है।

इस काल में स्त्रियों की शिक्षा में लगातार परिवर्तन होने के बावजूद पारिवारिक क्षेत्र में उनके समस्त अधिकार समाप्त हो गये थे। महिलाओं को अपने अधिकारों को मांगने और व्यवहारिक नियमों में किसी प्रकार का परिवर्तन करने के अधिकार नहीं थे। बाल विवाह, पर्दा प्रथा स्त्रियों की शिक्षा में मुख्य बाधायें थी। महिला परिवार की संचालिका थी लेकिन बाद में व्यवहारिक रूप में यह अधिकार पुरुषकर्ता को प्राप्त हो गये। पारिवारिक और सामाजिक समस्त प्रथा और परम्परागत नियमों और कानूनों को सर्वप्रथम महिला पर ही लादा जाता था। परिवार में दहेज की मात्रा सदस्यों की सेवा और अन्य धार्मिक कार्यो को लेकर महिला का शोषण एक सामान्य बात हो गई थी। राजनीतिक क्षेत्र में हिस्सा लेना कल्पना के बाहर की बात है एक एक ऐसे समय में जबकि महिला का घर में शोषण होता हो, शोषण करने वाला पुरुष स्वयं अंग्रेजों का गुलाम हो तो वह राजनीति में किस प्रकार हिस्सा ले सकती थी। सन् 1919 तक महिलाओं को वोट देने का अधिकार पूर्णतः प्राप्त नही था। सन् 1937 के चुनाव से पति की शिक्षा और सम्पत्ति के आधार पर बहुत थोड़ी सी महिलाओं को मताधिकार प्रदान किया।

स्वतंत्रता के पश्चात् महिलाओं की स्थिति

जब स्वतंत्रता ने पहली अंगडाई ली, तब भारत के राजनैतिक और सामाजिक–जीवन में स्त्रियों को जो पद प्राप्त हुआ, उसे देखकर बाहरी दुनिया चौंक पड़ी क्योंकि वह तो हिन्दू–स्त्रियों को पिछड़ी हुई प्रशिक्षित और एक प्रतिक्रियावादी–सामाजिक व्यवस्था में जकड़ी हुई, समझने की सभ्यस्त थी। स्वतंत्रता के पश्चात् नारी की स्थिति में परिर्वतन हुआ। अब नारी धीरे–धीरे अबला से सबला बनने के लिए अपने कदम घर की चारदीवारी से बाहर निकाल रही थी। महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिए देश के कई समाज सुधारकों ने विशेष ध्यान देना प्रारंभ कर दिया था। जवाहर लाल नेहरू ने कहा था–फ्रांस के किसी आदमी ने लिखा था कि किसी भी देश की स्थिति को देखने का सबसे श्रेष्ठ उपाय उस देश की स्त्रियों की स्थिति का पता लगाना है। मेरे विचार में यह ठीक है। भूतकाल के कई प्रसिद्ध उदाहरणों के बाद भी यह कहना सत्य होगा कि भारत में पिछले सैकड़ों वर्षों से महिलाओं की स्थिति कानूनी, सामाजिक या सार्वजनिक जीवन में किसी भी दृष्टिकोण से अच्छी नहीं रही है। हाल ही के वर्षों में राजनैतिक व मानवीय गतिविधियों के अन्य क्षेत्रों में उन्होंने प्रगति की। मुझे प्रसन्नता है कि हमारी संसद ने हाल ही में कुछ विधान पारित किए हैं जिन्होंने महिलाओं को कानूनी रूप से कई बन्धनों से मुक्ति दी है फिर भी अभी कई बाधाएँ हैं जिन्हे दूर करना है।

अब नारी मौन नहीं रहती थी वह खुलकर अपनी समस्याओं को दूर करती थी। अपने ऊपर हो रहे शोषण को दूर करने के लिए स्वयं नारी ने ही कमर कस ली थी। धीरे–धीरे नारियों ने हिन्दू जीवन के परम्परागत सिद्धांतो को केवल अस्वीकार ही नहीं किया बल्कि सिद्धांतो को बदलने की चुनौती भी दे डाली। नारी की आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक क्षेत्र में जो परिवर्तन देखने को मिले वह कल्पना से परे थे। नारी अब पुरुषों पर कम आत्मनिर्भर रहने लगी। नारियों ने अपने विचारों को सामाचार पत्र, संचार के साधनों, पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से लोगों तक पहुँचाया।

परिवार में अब कन्या का जन्म बुरा नहीं माना जाता। पुत्र–पुत्री के लालन–पालन में कोई अन्तर नहीं किया जाता था। अब विवाह के लिए पुत्री की राय भी महत्वपूर्ण मानी जाने लगी। दम्पत्ति चाहे पढ़े–लिखे हों या अनपढ़, उनके मन में पुत्र के प्रति मोह तो कम

नहीं हुआ, परन्तु पुत्री के प्रति उपेक्षा में भी कमी नहीं आई। अपितु उनमें यह भावना अवश्य पाई गई कि भाई के समुचित विकास के लिए एक बहन की आवश्यकता भी है। परिवार में महिलाओं को दासी नहीं बल्कि एक सहयोगी व मित्र माना जाने लगा। संयुक्त परिवारों में महिलाओं को उतना महत्व नहीं दिया जाता था, परंतु वर्तमान में एकाकी परिवार में वृद्धि के साथ ही महिलाओं की राय भी ली जाने लगी है। धीरे–धीरे अब महिलाओं को गृह स्वामिनी, गृह मंत्री अर्थात् गृह व्यवस्था की संचालक के नाम से पुकारा जाता है।

शिक्षा के क्षेत्र में महिलायें जिस तेजी से उन्नति कर रही हैं 100 वर्ष पूर्व उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। स्वतंत्रता से पूर्व जबकि न तो शिक्षा की समुचित सुविधायें उपलब्ध थीं, न ही माता–पिता चाहते थे कि उनकी लड़कियाँ शिक्षा ग्रहण करें इसके विपरीत स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इस क्षेत्र में व्यापक कदम उठाये गये। ये इन तथ्यों से स्पष्ट हैं कि 1882 में भारत में ऐसी केवल 2,054 महिलाये थीं जो कुछ पढ़–लिख सकती थीं। मगर 1971 की जनगणना की रिपोर्ट के अनुसार साक्षर महिलाओं की संख्या बढ़कर लगभग 4 करोड़ 93 लाख हो गई। जहाँ पहली बार 1883 में एक महिला ने बी.ए. पास किया था वहीं 1981 में 65 लाख से अधिक लड़कियाँ विभिन्न महाविद्यालयों में स्नातक और स्नातकोत्तर कक्षाओं में सभी विषयों में पढ़ाई कर रही थी। आज कला और विज्ञान के साथ–साथ लड़कियों को गृह विज्ञान, हस्तकला और संगीत की शिक्षा प्राप्त करने की सुविधायें उपलब्ध हैं। मेडिकल कॉलेजों एवं इंजीनियरिंग कॉलेजों में लड़कियों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है। शिक्षा के प्रसार के कारण महिलाओं को बाल विवाह एवं पर्दा प्रथा आदि कुरीतियों से छुटकारा मिल गया। आज मेडिकल कॉलेज तथा व्यवसायिक व औद्योगिक कॉलेजों में कुल विद्यार्थियों में 24 प्रतिशत लड़कियाँ पढ़ रही हैं और प्रशिक्षण पा रही हैं। विश्वविद्यालयों एवं कॉलेजों में इनका प्रतिशत 16 है।[11]

वर्तमान में महिलाओं ने समाज कल्याण और महिला कल्याण में सुचारू रूप से व्यापक तौर पर हिस्सा लेना प्रारंभ कर दिया है। न सिर्फ विश्वविद्यालयों की परीक्षा में अपितु अखिल भारतीय स्तर पर होने वाली प्रतियोगी परीक्षाओं यथा आई.पी.एस., आई.ए.एस., आई. एफ.एस. में प्रथम स्थान प्राप्त करके उन्होंने सिद्ध कर दिया कि उनका मानसिक स्तर पुरुषों से किसी प्रकार भी कम नहीं है। के. एम. पाणिक्कर ने स्त्री शिक्षा की इस प्रगति को देखते हुये कहा कि स्त्री शिक्षा ने विद्रोह की उस कुल्हाड़ी की धार तेज कर दी है, जिससे हिन्दू सामाजिक जीवन की जंगली झाड़ियों को साफ करना सम्भव हो गया है।

आर्थिक क्षेत्र में महिलाओं ने स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद पर्याप्त प्रगति की है। पुरुषों पर उनकी निर्भरता लगातार कम होती जा रही है वे विभिन्न उद्योग–धन्धे, शिक्षा, चिकित्सा, समाज कल्याण व व्यवसाय आदि क्षेत्रों में प्रवेश कर अपनी रोजी–रोटी की व्यवस्था प्रारम्भ की है। आज महिलायें आर्थिक रूप से अपनी आजीविका उपार्जित कर रही हैं। आज उनके आत्मविश्वास, कार्यक्षमता और मानसिक स्तर में जो प्रगति हुई वह उनको आर्थिक रूप से मिली हुई स्वतंत्रता का परिणाम है।

राजनीतिक क्षेत्र में भी महिलायें पीछे नहीं रही हैं। 1937 में भारत में 41 सुरक्षित सीटों पर सिर्फ 10 महिलायें चुनाव में आगे आई थीं, जबकि विधानसभा 1957 में 105 महिलायें विधानसभा में निर्वाचित हुई। 1977 में आम चुनावों के पश्चात् लोकसभा एवं राज्यसभा में कुल मिलाकर 42 महिलायें थीं। स्वतंत्रता के बाद राजनीति के क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी बढ़ती जा रही है। के.एम. पणिक्कर[12] ने अपनी पुस्तक हिन्दू समाज अपने निर्णय के द्वार पर में लिखा कि–जब स्वतंत्रता ने पहली अंगडाई ली, तब भारत के राजनीतिक जीवन में महिलाओं को जो पद प्राप्त हुआ उसे देखकर बाहरी दुनिया चौंक पड़ी क्योंकि वह तो भारतीय महिलाओं को अशिक्षित, पिछड़ी और प्रतिक्रियावादी, सामाजिक व्यवस्था में जकड़ी हुई समझने की अभ्यस्त थी।

भारत में 73 वें संविधान से पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं के लिये 30 प्रतिशत स्थान आरक्षित किये गये। 1996 में महिलाओं के लिये राष्ट्रीय नीति में कहा गया है कि शान्ति विकास और समानता के लक्ष्यों में वृद्धि के लिये महिलाओं की निर्णय प्रक्रिया में महिलाओं को पूरी प्रतिभागिता समान रूप से उपलब्ध कराये जाने की गारण्टी के लिये कदम उठाये जायेंगे पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त टी.एन. शेषन का कहना था कि 'हमे राजनीति में और अधिक महिलाओं की आवश्यकता है। हम सभी जानते हैं कि महिलायें अधिक व्यवहारिक होती हैं। वे राजनीति को मर्यादित बनायेंगी।' शिक्षा ने महिलाओं को इस कदर प्रभावित किया कि उन्होंने अपनी स्थिति को समाज में ओर मजबूत बनाने के लिए राजनीति में प्रवेश किया और वे सफल भी रहीं। वे विधानसभा व लोकसभा का चुनाव लड़ती है व सफल होती है। राज्यपाल, मुख्यमंत्री, प्रधानमंत्री और यहाँ तक कि राष्ट्रपति तक के रूप में अपनी अमिट छाप छोड़ी है। महिलाओं की चेतना अब राजनीति में दिनों–दिन बढ़ती जा रही है। महिलायें स्वतंत्र रूप से मताधिकार का उपयोग कर रही हैं।'

निष्कर्ष

स्वतंत्रता के पश्चात् महिलाओं की स्थिति में सुधार हुआ है। महिलायें सार्वजनिक कार्यो में पुरुषों से कंधे से कंधा मिलाकर भाग ले रही हैं। सबसे अधिक शांतिप्रिय व सहनशील माने जाने वाली महिलायें अब अपने अधिकारों की मांग स्वयं करना प्रारंभ कर दिया है। अब वे सामाजिक बंधनों से बहुत हद तक मुक्त हो चुकी हैं। पर्दा प्रथा शहरों में अब न के बराबर है जबकि ग्रामीण क्षेत्रो में अब पहले की अपेक्षा काफी हद तक सुधार हुआ है। अब महिलायें घर की चारदीवारी से बाहर निकल कर खुली हवा में सांस ले रही हैं। महिलायें अब विवाह जैसे महत्वपूर्ण फैसलों में स्वतंत्र निर्णय लेने लगी हैं। अब वे प्रेम विवाह, अन्तर्जातीय विवाह व विलम्ब विवाह को अधिक महत्व देने लगी हैं। भारत को स्वतंत्र हुये 65 वर्ष हो गये हैं इन 65 वर्ष के अन्तराल में महिलाओं में जो परिवर्तन आये वह अविस्मणीय है। 18वीं और 19वीं सदी की नारी में जमीन आसमान का अन्तर हो गया है। आज महिलायें पुरुषों द्वारा दी गई यातनाओं और दुर्व्यवहारों का खुलकर सामना कर रही हैं और वे इसमें काफी हद तक सफल भी हुईं हैं। आज के घर की चारदीवारी व पर्दा प्रथा को समाप्त कर अपने अधिकारों का पूर्ण रूप से उपयोग कर रही है। पुरुषों के अहम् कि 'महिलाये केवल घर के कार्यों के लिये है' को झूठा साबित कर के दिखाया है। बाल विवाह व बेमेल विवाह के विरूद्ध उन्होंने आवाज उठाना प्रारम्भ कर दिया है अब वे जीवन भर वैधव्य जीवन जीने के लिये तैयार नहीं है। आज महिलायें स्वयं

समाज के पुराने सिद्धांतो व परम्पराओं को चुनौती दे रही है। इन सब में वक्त जरूर लगेगा लेकिन यह निश्चित है कि आने वाले समय में नारी को वे सारे अधिकार प्राप्त होंगे जिन्हें पुरुष वर्ग पहले देना नहीं चाहता था।

संदर्भ

1. डॉ. राजबली पाण्डेय–हिन्दू संस्कार, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, 1978।
2. राधाकुमुद मुकर्जी–वुमेन ऑफ इण्डिया, गवमेन्ट ऑफ इण्डिया पब्लिकेशन, 1979।
3. बृजेन्द्र सिंह–रीवा जिले में आधुनिकीकरण का महिलाओं पर प्रभाव, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, अ.प्र.सिंह वि.वि., रीवा, 2001।
4. श्रीमती स्कालास्तिका कुजूर–वैदिक एवं धर्मशास्त्रीय साहित्य में नारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1982।
5. डॉ. अल्तेकर–पोजीशन ऑफ वुमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, हिन्दू विश्वविद्यालय, कल्चर प्रकाशन, बनारस, 1938।
6. ब्रह्म पुराण, 3/26।
7. डॉ. गजानन शर्मा–प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, 1971।
8. डॉ. वनमाला भवालकर–महाभारत काल में नारी, अभिनव साहित्य प्रकाशन, सागर, 1964।
9. हरीशचन्द वर्मा–मध्यकालीन भारत, विश्वविद्यालय प्रकाशन, दिल्ली, 1999।
10. त्रिपाठी सी.बी.–भारतीय समाज में नारी आदर्शों का विकास, 1968।
11. योजना मासिक पत्रिका, वर्ष 1998।
12. के.एम. पणिक्कर–हिन्दू समाज अपने निर्णय के द्वार पर, द्वारिका प्रकाशन, हरिद्वार, 2003।